हिंदी उपन्यास में लोक-संस्कृति

संपादक

पूनम सिन्हा

त्रिविक्रम नारायण सिंह

हिन्दी उपन्यास में लोक संस्कृति

सम्पादक
पूनम सिन्हा
त्रिविक्रम नारायण सिंह

समीक्षा प्रकाशन
दिल्ली / मुजफ्फरपुर

ISBN : 978-93-87638-85-3

प्रथम संस्करण
2020

सर्वाधिकार ©
सम्पादक

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे.के.मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)-842 001
फोन : 09334279957, 09905292801
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www : samikshaprakashan.blogspot.com
samikshaprakashan.in

दिल्ली कार्यालय
आर-27, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-92
मो.-07970692801

पृष्ठ-सज्जा
सतीश कुमार

मुद्रक
बी०के० ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
400.00 (चार सौ रुपये)

Hindi Upanas Me Lok Sanskriti
Edited by **Poonam Sinha** **Rs. 400.00**

अनुक्रम

सम्पादकीय.... 05

- भारतीय संस्कृति लोक संस्कृति में जीवंत है : डॉ. मृदुला सिन्हा 11
- डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में लोक संस्कृति : डॉ. उषा किरण खान 19
- लोक जीवन और उपन्यास : प्रो. सत्यकाम 24
- उपन्यास और लोक-संस्कृति : रेवती रमण 43
- घरवास : लोक जीवन से साक्षात्कार : पूनम सिन्हा 49
- सुर बंजारन : लोक से विलुप्त होते सुरों की धड़कन : पूनम सिन्हा 57
- हिंदी उपन्यासों में लोकसंस्कृति : रामधारी सिंह दिवाकर के उपन्यासों में लोकसंस्कृति : हरिनारायण ठाकुर 69
- हिन्दी उपन्यासों में लोक-संस्कृति के विविध आयाम 'देहाती-दुनिया' के संदर्भ में : प्रो. सुधा बाला 78
- लोकसंस्कृति का ऐतिहासक दस्तावेज अगन हिंडोला : प्रो. मंगला रानी 88
- लोकजीवन को सहेजने वाली कथाकार : उषा किरण खान : सुनीता गुप्ता 94
- आंचलिक उपन्यास में लोक-संस्कृति : डॉ. शैल कुमारी वर्मा 101
- मैला आँचल में लोक संस्कृति की झलक : डॉ. त्रिविक्रम ना. सिंह 107
- फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में लोक संस्कृति के विभिन्न चित्र : डॉ. धीरेन्द्र प्रसाद राय 116
- अमृतलाल नागर के उपन्यासों में लोक संस्कृति : डॉ. कल्याण कुमार झा 124
- लोक जीवन की यथार्थवादी एवं आदर्शवादी चेतना का सच्चा दस्तावेज 'मैला आंचल' : स्वर्णिम शिप्रा 133
- आँचलिक उपन्यासों में लोक-संस्कृति : पल्लवी कुमारी 142
- 'गोदान' में लोक-संस्कृति : स्मृता 148
- प्रेमचन्द के उपन्यासों में लोक-संस्कृति : उमेश मल्लिक 153

• 'गोदान' में निहित लोक-संस्कृति के चित्र : रवि कुमार 157
• नागार्जुन के उपन्यासों में लोक-संस्कृति : डॉ. इन्दिरा कुमारी 161
• काशीनाथ सिंह के उपन्यासों में लोक संस्कृति : डॉ. दुर्गानन्द यादव 168
• रामधारी सिंह दिवाकर के उपन्यासों में लोक-संस्कृति : वेदांत चंदन 176
• अनामिका के उपन्यासों में लोक-संस्कृति : सिन्धु कुमारी 182
• हिंदी उपन्यास में लोक-संस्कृति : शिव प्रिया 188
• भगवानदास मोरवाल के उपन्यास 'हलाला' में लोकसंस्कृति : रेशमी कुमारी 191
• रेणु के उपन्यासों में लोक संस्कृति : स्मिता कुमारी 194
• संस्कृति की सामासिकता : डॉ. वीणा शर्मा 198
• आंचलिक उपन्यासों में लोक-संस्कृति : विनीता कुमारी 205

संगोष्ठी प्रतिवेदन 210

■

मैला आँचल में लोक संस्कृति की महक

डॉ. त्रिविक्रम नारायण सिंह

फणीश्वरनाथ रेणु स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य में लोक-संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ आराधक सिद्ध हुए हैं। उन्हें गाँव की संवेदित माटी की चेतन-सत्ता से बेहद लगाव था और धन्यता-बोध भी। गाँव की सामाजिक संस्कृति, लोककला, लोक-गीत-संगीत, नृत्य, बोलचाल, रहन-सहन, आहार-व्यवहार उन्हें भाता था। नाच-गाने, मेले-उत्सवों में वे काफी दिलचस्पी रखते थे। लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, ढोल-मृदंग बजाना, ढोलक बजाकर संकीर्तन करना रेणु के जीवन और साहित्य दोनों का उल्लेखनीय विषय है। रेणु ने वैज्ञानिक विकास के तकनीकी-काल में विकृत और विद्रुप बनते जा रहे सरस और आसान जीवन को शापग्रस्त करने वाले संदर्भों को रेखांकित करते हुए कहा है–''टेक्नोलॉजी के युग में हमलोग जीवन के उपयोग का मूल तकनीक ही खो बैठे हैं। हजारों-हजार जनता के बीच भी हरेक आदमी विच्छिन्न है, अकेला है। हँसी-खुशी, उत्तेजना-अवसाद, आनन्द-उल्लास सभी यांत्रिक हैं। धरती की पपड़ी टूट गयी है, मन की पपड़ी ज्यों-की-त्यों पड़ी हुई है। यह वीरान होती जा रही है। लगता है मन को छूने वाला मंत्र हम भूल गये हैं।' इस मन को लोक संस्कृति के सांदर्भिक पुनरुत्थान द्वारा ही पढ़ाया जा सकता है। गाँव की मिट्टी में 'सांस्कृतिक सोना' मिलाकर ही समाज को मानवीय एवं मनुष्य को सामाजिक बनाया जा सकता है।[1]

रेणु सदैव मनुष्य की, उसमें भी ग्रामीण परिवेश के वैसे मनुष्य की श्रेष्ठता सिद्ध करने में साधनारत रहे, जिसे संवेदित मिट्टी से अपनत्व है। अपने सूक्ष्म और सर्जक व्यक्तित्व से उष्मा और चिनगारियाँ विकीर्ण करते

हुए ऐसे लोग समाज और सम्प्रदाय को तेज प्रदान करते हैं। उन्होंने मिथिलांचल के आंचलिक जीवन की बारीक विशेषताओं को अपनी रचनाओं में संयोजित किया है। आंचलिक साहित्य की नयी परम्परा का उन्होंने सूत्रपात किया। उनका प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' कथा साहित्य के सौन्दर्य विधान को सर्वथा एक नया आयाम देता है। नारकीय यातना से दबे सिसकते भारतीय गाँवों की असलियत से पूरे देश और समाज को परिचित कराकर उनकी स्थिति में सुधार लाने के लक्षण से लोगों को जागृत करना और सामान्य जनों के मन में भरी- पूरी जिन्दगी की इच्छा पैदा करना रेणु की महत्त्वाकांक्षा थी और कोशिश भी। रेणु की रचनाओं में अभिव्यक्त उपेक्षित अंचल की संवेदनाओं और जीवन-स्पंदनों के रचनात्मक विनियोग से यह प्रमाणित होता है। वे रचनाकार को परिवर्तन की प्रक्रिया का गवाह नहीं भागीदार बनने पर बल देते थे। एक बार अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था–"मेरी कहानियों और उपन्यासों के पात्र वे ही होते हैं, जो मेरे पास के लोग हैं।" इस कथन की सत्यता 'मैला आँचल' के अनेक उदाहरणों से प्रमाणित होते हैं। उपन्यास के प्रारम्भ में ही एक पात्र बहरा- चेथरू हमारे सामने आता है, वह रेणु के गाँव औराही हिंगना का वही चेथरू है जो बचपन में रेणु को स्कूल भेजने जाता था। रेणु की मृत्यु के बाद तक वह जीवित था।[2] राम लाल बाबू जैसे अनेक पात्रों के सम्बन्ध में ऐसा ही प्रतीत होता है–जब रेणु की रचना-प्रक्रिया का अनुशीलन किया जाता है। इस मायने में रेणु प्रेमचन्द के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। प्रेमचन्द ने स्वयं कहा है–"एक जरा-सा इशारा, एक जरा-सा बीज लेखक के मस्तिष्क में पहुँचकर इतना विशाल वृक्ष बन जाता है कि लोग उसपर आश्चर्य करने लगते हैं।"–'रंगभूमि का बीजांकुर उन्हें एक अन्धे भिखारी में मिला था, जो उनके गाँव में रहता था। वही अन्धा भिखारी 'रंगभूमि' में सूरदास बन गया।[3] वे अपने पात्रों को जो इतना सजीव और विश्वसनीय बना सके हैं–उसका रहस्य यही है।

रेणु की रचनाओं में निर्वैयक्तिकता के गुण मौजूद हैं। उनका व्यक्ति उनके रचनाकार से सदैव अलग रहा है। वे व्यावहारिक जीवन में सक्रिय राजनीति में उग्र समाजवादी विचारधारा के समर्थक थे, जो अपनी प्रगतिशीलता के लिए विख्यात हैं। वे तंत्र-मंत्र में विश्वास करते थे।

लेकिन उनकी रचनाएँ न तान्त्रिक रेणु की है और न समाजवादी रेणु की। इसीलिए प्रसिद्ध कथाकार निर्मल वर्मा ने कहा है ''रेणु समकालीन हिन्दी साहित्य के सन्त लेखक थे। 'सन्त' शब्द से निर्मल वर्मा का अभिप्राय है–ऐसा व्यक्ति जो दुनिया की किसी भी यीज को त्याज्य और घृणास्पद नहीं समझता, जीवित तत्व में पवित्रता और सौन्दर्य खोज लेता है, इसलिए नहीं कि वह इस धरती पर उगने वाली कुरूपता, अन्याय, अँधेरे और आँसुओं को नहीं देखता, बल्कि इन सबको समेटने वाली अवाध प्राणवत्ता को पहचानता है। 'रेणु' द्वारा सामाजिक कुरूपता पर किये गये व्यंग्य में कटुता अपेक्षाकृत न्यून है–तो यह रेणु के व्यक्तित्व की नैतिक निष्ठा है।

'मैला आँचल' (1954) रेणु की आँचलिक मगर असाधारण औपन्यासिक कृति है। रेणु के व्यक्ति और रचनाकार दोनों के रचाव में संवेदित माटी की चेतन-सत्ता का अहम् योगदान रहा है। उन्हें मिट्टी की सोंधी-गंध और लोक-संस्कृति से बहुत लगाव था। यही कारण है कि 'मैला आँचल' रेणु का पहला फिर भी परिपक्व औपन्यासिक रचना है। समीक्षकों ने 'मैला आँचल' के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार प्रकट किये हैं। डॉ. इन्द्रनाथ मदान का मानना है कि 'इसे आंचलिक उपन्यास जैसा नाम देना ही अराजकता को गहराना है।' नाट्य समीक्षक डॉ. नेमीचन्द्र जैन ने इससे भिन्न मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा है–'इसमें मिथिला के बदलते हुए आज के गाँव की आत्मा है जो सदियों से सोते-सोते जागकर अँगड़ाई ले रही है।' डॉ. रामदरश मिश्र रचना की प्रकृति को रेखांकित करते हुए कहते हैं–'हिन्दी में यह पहली बार किसी अंचल-विशेष के उपेक्षित जीवन की समस्त छवि और कुरूपता, सीमा और सम्भावना को इतनी मानवीय ममता और सूक्ष्मता का रूप दिया गया है।' डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय इसके रचनातन्त्र को केन्द्रित कर कहते हैं–'आंचलिक यथार्थ की यह अभिनव अभिव्यक्ति है।'

रचनाकार रेणु स्वयं 'मैला आँचल' को आँचलिक उपन्यास की संज्ञा देते हैं। उपन्यास की भूमिका में उनका वक्तव्य है–''यह है मैला आँचल, एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है; इसके एक ओर है नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा-रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो

जाती है, जब हम दक्खिन में सन्थाल परगना और पच्छिम में मिथिला की सीमा-रेखाएँ खींच देते हैं। मैंने इसके एक हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास कथा का क्षेत्र बनाया है। इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चन्दन भी, सुन्दरता भी है, कुरूपता भी मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।

कथा की सारी अच्छाइयों और बुराइयों के साथ साहित्य की दहलीज पर आ खड़ा हुआ हूँ; पता नहीं अच्छा किया या बुरा! जो भी हो, अपनी निष्ठा में कमी महसूस नहीं करता।[4]

अंचल विशेष का बहुआयामी समग्र-जीवन-अनुभूति की ईमानदारी और अभिव्यक्ति की सच्चाई के साथ मैला आँचल में उपस्थित है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थिति, आशा-प्रत्याशा, विश्वास-अविश्वास, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेशभूषा, बोल-चाल, पर्व-त्योहार, जात-पात, अहम्-इदम्, रूढ़ि-अन्धविश्वास, ज्योतिष-विज्ञान, खेत-खलिहान, पशु-पक्षी, प्रकृति-पर्यावरण आदि को अपनी रचनाशीलता में समेटे यह उपन्यास कथा-साहित्य को एक नया आयाम देता है। इसमें नायक व्यक्ति नहीं बल्कि अंचल और उसका परिवेश है। अंचल विशेष की कथा होकर भी यह समग्र भारत के गाँवों का चित्र प्रस्तुत करता है। रेणु ने स्वयं कहा है कि–'मेरीगंज अपने अंचल के पिछड़े गाँव का प्रतीक है।'

यह सच है कि आजादी के बाद गाँवों में अस्तित्व पहचान की जागरुकता बढ़ी। इस स्थिति में उपन्यासकार को आकर्षित किया और अपेक्षित गाँव की जिन्दगी-अपनी सम्पूर्णता में उपन्यास के केन्द्र में आ गयी। इस यथार्थ के आग्रह ने जहाँ आंचलिकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया और यथार्थवादी मनोभूमि वाले लेखकों को लोक-संस्कृति और अंचलों के जीवन की ओर आकृष्ट किया वहाँ इस आधुनिकता-बोध ने उपन्यास के शिल्प को भी बदला। आंचलिक उपन्यास का उदय इन्हीं परिस्थितियों की देन है।

मैला आँचल लोक संस्कृति का आख्यान है। इसमें लोक कथाओं, लोक गीतों, लोक उत्सवों, लोक मान्यताओं के माध्यम से लोक जीवन की

अभिव्यक्ति रेणु को अभीष्ट रहा है। रेणु ने लोक-कथाओं को महत्व देकर आम जनों की जीवन-धारा को पहचानने की चेष्ठा की है। लोक-कथाओं में गुँथे नैसर्गिक जीवन की संचित रहस्यमय सत्ता से अपने संकटग्रस्त-अवसादपूर्ण समाज को अवगत कराकर सतर्क और सचेष्ट करने का रेणु ने रचनात्मक प्रयास किया है। इन लोक कथाओं के नस-नस में लोकगीत घुले हुए हैं। लोकगीत की प्रस्तुति वाले गायन और वादन में भी लेखक निष्णात मालूम पड़ते हैं। चाहे ढोल, मृदंग, झाँझ हो या नृत्य की गति हो या लोकगीत की तान हो-सबमें एक नये प्रकार का स्पन्दन-उत्पन्न होता प्रतीत है। इसकी आन्तरिक अन्विति और मसृणता को लक्षित करते हुए डॉ. चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे ने सच ही कहा है कि-''रेणु ने मेरीगंज में वजने वाले वाद्यों को सुना ही नहीं है, उससे निकलने वाले अर्थों को भी पहचाना है। जैसे ढोल की ताल के दो विभिन्न अर्थ हैं-अखाड़े, का ढोल 'चटधा', 'गिड़धा', 'चटधा', 'गिड़धा' के द्वारा मल्लों से कहता है, 'आजा भिड़जा', 'आजा भिड़जा'। यही ढोल जब कालीधान में पूजा के अवसर पर बजता है तो उसमें से आवाज आती है-'धागिड़धिन्ना', 'धागिड़धिन्ना'! अर्थात 'जै जगदम्बा, जै जगदम्बा!'[5]

जिस प्रकार निष्प्राण मिट्टी में पानी पड़ने से वह मिट्टी न सिर्फ प्राणवान वन जाती है, अपितु बीज डालने पर उसमें स्वादिष्ट अन्न और खट्टे-मीठे सभी प्रकार के फल-फूल उग आते हैं, ठीक उसी प्रकार से जब ग्रामीण-भाषा, ग्रामीण गीत, ग्रामीण पशु-पक्षी, ग्रामीण नदी-नाले, ग्रामीण-व्रत-त्योहार, ग्रामीण मेले-ठेले आदि को यदि रेणु जैसा रचनाकार मिल जाता है, तो ग्रामीण-जीवन भी अपनी उष्मा और ताजगी से अनुप्राणित होकर अँगड़ाई लेने लगता है। रेणु के रचना-संसार में जन-जीवन की समस्याओं के बहुरंगी और रागात्मक चित्र प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। प्रेमपरक रागात्मक जीवन को भी रेणु ने गीतों में मधुरता से पिरोया है। पावस ऋतु में प्रेम-व्यापार परवान किस प्रकार चढ़ने को विकल होता है-''**मास असाढ़ चढ़ल बरसाती/घर-घर सखी सब झूलनी लगाती/झूली गावे,/झूली गावति मंगलबानी/सावन सखि अलि हे मस्त जवानी.../देखो, देखो !/देखो-देखो सखि री** वृजबाला/**कहाँ गए जशोधा कुमार, नन्दलाला/....देखो, देखो!**''[6]

परदेश से लौटने वाले कन्त के कान्ता में मिलनकांक्षा की प्रसन्नता तरल पिच्छल भंगिमाओं में प्रकट हो रही हैं। लेकिन रह रह कर उन्हें अन्देशा भी हो रहा है कि हमारा कन्त कहीं गाँव में ही राह न भूल जाए! और किसी भी झूलनी पर न झूलने लग जाय।

प्रेम के राग-रंग के ही नहीं, लोक-व्याप्त तीज-त्योहार, होली-दीवाली, सोहर, समदाउनी, बारहमासा, जन्मोत्सव, आदि के अनेक लोक-कंठ में फूटने वाले मधुर, मुलायम, निर्मल, निश्छल, आकर्षक-गीत प्रसंगानुकूल रेणु ने 'मैला आँचल' में रचा है।

लोक नृत्यों से भी मैला आँचल का आख्यान अनुगुंजित है। जालिम सिंह नाच, विदापत नाच, ठेटर कम्पनी नाच, विदेशिया नाच, बलचाही नाच, संथाली नाच, विहला नाच-लोक में व्याप्त प्रसिद्ध ऐसे नृत्य हैं जो अलग-अलग समय एवं संदर्भों में आयोजित होते हैं और अपने सांस्कृतिक आवश्यकता को पूर्ण करते हैं। वस्तुतः उत्सवों, पर्वों तथा त्योहारों को जन संस्कृति का शरीर माना जाय, तो लोक गीत और लोक नृत्य उसकी आत्मा है।

लोक-संस्कृति-उत्सवों और त्योहारों की सुदीर्घ परम्पराओं में फलित होती हुई विकसित होती है। मैला आँचल में इसके अनेक प्रसंग ध्यानाकृष्ट करते हैं, जिनमें पाठक अभिभूत होता है। रामनगर मेला, लाल बाग मेला, रौतहट मेला, सतुआनी पर्व, जुड़शीतल, अनन्त पर्व, जाट-जट्टिन पर्व, वधवा-पर्व जैसे विधाओं में मिथिलांचल की लोक-संस्कृति महमह करती–मैला आँचल में कथा-प्रसंगों को मार्मिक और लोकप्रिय बनाती है।

मैला आँचल में अनेक लोक-कथाएँ समाहित हैं जो मूलकथा से जुड़ी हुई हैं। लोक मानस में व्याप्त और प्रचलित ये लोक कथाएँ प्रेरक और जीवनधर्मी हैं। सीमित संसाधनों में जीवन जी रहे आम-लोगों के अभावों, मजबूरियों, उलझनों और गाँठों को दूर करने की युक्ति और शक्ति से ये कथाएँ सम्पन्न हैं–ऐसा लोक-विश्वास उनकी जीवन-प्रणाली है। इनका आधार लोक कंठ और जनश्रुतियाँ हैं। ये लोक-कथाएँ लोक-मानस की मौलिक और मौखिक सम्पत्ति होती है। कमला मैया की कथा, सुरंगा-सदावृज की कथा, कुमार-बिज्जेमल की कथा, कौआ-कैथा की कथा, लोरिक की कथा–आदि मेरीगंज के सामाजिक-जीवन और सांस्कृतिक

परिवेश को साकार करती प्रतीत होती है।

लोक-जीवन लोककथाओं में रोचकता से अभिव्यक्त होता है। यह भी सच है कि ग्रामीण जीवन अनेक प्रकार की भ्रान्तियों पर भी अवलम्बित होता है।, मार्टिन की कोठी में उसकी पत्नी मेरी का भूत लगता है। इस भय से कोई व्यक्ति उसके पास नहीं जाता है। एक बार ततमा टोली का नन्दलाल ईंटें लाने जाता है। ईंट छूते ही पीछे के जंगल से एक चुड़ैल निकलकर नन्दलाल को साँप के कोड़े से पीटकर मार देती है। लेकिन कमला मैया के महात्म के प्रसंग में जनता का आचरण धार्मिक प्रतीत होता है। कथावाचक का वक्तव्य है कि कमला मैया आवश्यकता पड़ने पर सबकी मदद करती है। कमला मैया भोज के लिए बर्तन उपलब्ध कराती है। लेकिन जब एक बार किसी किसान ने भोज के बाद थाली-कटोरी चुरा ली थी, तब से वह प्रथा बन्द हो गयी और चोर का पूरा परिवार शापवश नष्ट हो गया। सुशिक्षित बाबू विश्वनाथ प्रसाद भी ऐसी बातों में विश्वास करते हैं। उनका विश्वास है कि कमाला मैया की कृपा से ही उन्हें कमला पुत्री प्राप्त हुई है जिसके लिए उन्हें मनौतियाँ चढ़ानी पड़ी थी। कमला का विवाह इसलिए नहीं हो सका क्योंकि कमला मैया अपनी पुत्री को अपने पास रखना चाहती है।

जादू, टोना, ओझा, भगतई आदि भी ग्रामीण जीवन का परम्परित प्रसंग है। रेणु ने उसके विकृत आयामों को भी यथावसर यथार्थवादी रीति से प्रकट किया है। विधवा पार्वती की माँ को डायन बताकर जोतिखी काका का भोली जनता को बहकाना, उत्तेजित करना, गुमराह करना, ठगना, उसे घृणित-प्रवार से दंडित करने का षड्यंत्र रचना जैसो प्रसंगों में ग्रामीणों की अशिक्षा और अंध विश्वास, को लक्षित कराना रेणु का उद्देश्य है। क्योंकि उन्होंने अज्ञान और हठधर्मी के तत्त्व को प्रतिस्थापित करने के लिए इस घटना का संयोजन किया है। ग्रामीणों के विश्वास के अनुसार षड्यंत्रकारी जोतिखी काका को अन्त में इस पाप का प्रायश्चित करना पड़ता है। उन्हें लकवा मार देता है। कर्मों का फल भोगना पड़ता है। इसलिए उपकार करने की अनिवार्यता पर लेखक ने बल दिया है और उपकार करने की मनाही की है। इसी प्रकार खलासी जी का कार्य-व्यापार यथार्थपरक नहीं जादुई है। उसका जीभ को सूई से छेदना, आग-खाना,

जिन्दा कबूतर निगल जाना आदि अचरज और [illegible] हरकतें करना, मेरीगंज के नागरिकों की अज्ञानता अशिक्षा का प्रमाण पेश करता प्रतीत होता है। ऐसे अनेक छोटे अन्धविश्वास और अशिक्षा के प्रसंग मैला आँचल में भरे पड़े हैं।

धर्म के जितने स्वरूप हैं उसमें पूजा पाठ भी है। भारतीयों का दैनिक जीवन धर्म के इस स्वरूप से सामान्य तौर पर जुड़ा होता है। गाँव के लोगों में अन्धविश्वास की जड़ें बहुत गहरी जम चुकी है। मनगढ़न्त कहानियाँ ही अन्धविश्वास की आधारशिला है। अन्धविश्वास अहित का पर्याय सा है। रेणु ने लोक को इन प्रसंगों के माध्यम से सतर्क करने का सार्थक प्रयास किया है। आडम्बरपूर्ण धर्म का वर्चस्व समाप्त करने के उद्देश्य से रेणु ने इन कथा प्रसंगों को समाहित किया है।

जाति प्रथा भारतीय ग्रामीण जीवन की सच्चाई भी है और त्रासदी भी। मैला आँचल में कायस्थ, मलिक, यादव, धानुक, दुसाध, कोयरी, गुआर, पासवान, पोलिया- जैसी जातियों से सम्बद्ध पात्रों का सृजन हुआ है। जाति की जड़ें इतनी व्यापक हैं कि टोले-मुहल्लों का नामकरण भी जातिगत हुआ है। राजनीतिक पार्टियाँ भी इसकी शिकार हैं। जातियों में ऊँच-नीच का वर्ग-विभाजन भी भावना और व्यवहार के आधार पर है। यह समाज और राष्ट्र को किस प्रकार क्षति पहुँचाते हैं–रेणु ने इस रहस्य का उद्घाटन भी किया है।

मैला आँचल के अधिसंख्य- पात्र मानवीय दुर्बलताओं के शिकार हैं। वे विभिन्न प्रकार की कुरीतियों एवं कुरूपताओं में जीने को विवश हैं, फिर भी उनमें जीवन के प्रति अनासक्ति और नैराश्य की भावना नहीं है बल्कि जीवन के प्रति एक राग- भाव है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, दु:स्थितियों से शिकस्त उस समाज में मनुष्यता का स्रोत सूखता नहीं है। रचनाकार रेणु के रग-रग में मनुष्यता का राग-रंग रचा-बसा है। डॉ. प्रशांत इस दृष्टि से रेणु का प्रतिनिधि पात्र हैं। गाँव में गरीबी, शोषण, अनाचार, व्यभिचार, जाति- बंधन, ऊँच- नीच--जैसी अनेक भावना है। परन्तु प्रशांत को वहाँ का वातावरण तनिक भी अपने संकल्प से नहीं गिरा पाता। वह प्रत्येक क्षण वहाँ के विच्छिन्न जीवन का कायाकल्प करने को तैयार है। वह ममता से संकल्प के स्वर में कहता है-''मैं फिर शुरू

करूँगा—यहीं इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भींगी धरती पर प्यार के पौधे [illegible]। मैं साधना करूँगा, [illegible] भारत माता के मैला आँचल तले। कम से कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर [illegible] लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।" निश्चित ही युगों युगों तक लोक संस्कृति की महक फैलती रहेगी।

सन्दर्भ सूची :

1. फणीश्वरनाथ रेणु : सृजन और संदर्भ, संपादक डॉ. अशोक कुमार आलोक, पृ. 16.
2. उपरिवत्, पृ. 82.
3. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचन्द, पृ. 66.
4. मैला आँचल, लेखक–फणीश्वरनाथ रेणु, भूमिका से।
5. फणीश्वरनाथ रेणु : सृजन और संदर्भ, संपादक–डॉ. अशोक कुमार आलोक, पृ. 89.
6. मैला आँचल, लेखक–फणीश्वरनाथ रेणु, पृ. 211.
7. उपरिवत्, पृ. 353.

–एसोसिएट प्राफेसर, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग
वी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

■